'तिरस्कृत' आत्मकथा में दलित चेतना

प्रा.डॉ.मनोहर भंडारे
हिंदी विभाग
श्री हावगीस्वामी महाविद्यालय,
उदगीर जि.लातूर (महा.)

'तिरस्कृत' आत्मकथा में जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था से वंचित विवंचना में जीनेवाले दलित समूह की पीडा है तो दूसरी ओर षिक्षा, संगठन और संविधान से दलित समाज जो करवटे ले रहा है उसे प्रकट किया गया है। गाँव में आत्मकथाकार के पिता ठाकुर को सिर उपर कर देख नहीं सकते थे। वहीं दिल्ली से सरकारी नौकरी से रिटायर होकर पक्का मकान बनवाने गाँव आता है तब वह ठाकुर से कहता है–''ठाकुर चाय बनवाऊँ पियोगे?'' जिससे ठाकुर के तन–बदन में आग लग जाती है। वह घायल भुजंग की तरह तडप कर रह गया। लेकिन गुस्सा जाहिर न कर पाया। आत्मकथाकार के पिता रोहनलाल को यह हिम्मत षहरी परिवेष ने दी अन्यथा गाँव जाति व्यवस्था की प्रयोगषाला है। वे ठाकुर से कहते भी हैं–''हाँ, ठाकुर ...., गाँव में रहकर हम दलितों का कहाँ गुजारा, आधे से ज्यादा जीवन तुम्हारी गुलामी करते बीता। षहर में जाकर ही बालकों को पढा–लिखा लिया है..., गाँवों में तो अभी वही हालात है।'' इस देष के गाँवों में दलित जाति में जन्म लेना कितना कश्टकर व अपमानित है, यह तो वही जान सकता है जिसने भोगा और सहा हो। किन्तु रोहनलाल षहरी माहौल से पूर्णतः बदल चुके हैं, जिसमें अस्मिता के अहसास से चेतना प्रखर हुई है।

फुसावली गाँव के जाटवों ने मरे जानवर को गाँव के बाहर ले जाना, चमडा निकालना जैसे जातिनिहाय पषुवत परंपरा को त्याग दिया जिस कारण सवर्ण भडकते हैं तब जाटवों को अपनी मुक्ति के लिए सवर्णों के अत्याचारों से गुजरना पडता है। इतना ही नहीं बसिठों ने बहन–बेटियों को घर से बाहर निकलना तक दुश्कर कर दिया था किन्तु गाँव में जाटवों के भीतर मुक्ति की छटपटाहट चेतना का रूप धारण कर रही थी। हजारों सालों की परंपरा को त्याग दिया था अर्थात् जाटवों ने जैसे संपूर्ण व्यवस्था को चुनौती दी थी। लेखक के षब्दों में–''हमारे गाँव के जाटवों ने बहुत पहले मरे जानवर उठाना बन्द कर दिया था। गाँव के तथाकथित सवर्णों को यह अच्छा नहीं लगा। इस घृणित काम को छोडने के लिए हमारे गाँव के जाटवों को गुलामी से मुक्ति के लिए कितने दंष झेलने पडे। उनका और उनकी बहन बेटियों का घर से निकलना दूभर कर दिया था गाँव के इन बसीठों ने।''

इस आत्मकथा में दलित समूह की उच्च जातियों और निम्न जातियों में कईं बार अनबन हो जाती है। किन्तु कई प्रसंगों में सभी दलित जातियों में संगठन भी परिलक्षित होता है। अर्थात् दलितों में एकता का भाव या उससे निर्माण होनेवाली चेतना संगठनात्मक भाव को दर्षाती है। सूरजपाल चौहान के पिता रिटायर होने के बाद फुसावली गांव में पक्का मकान बनवाना चाहते हैं किंतु ठाकुर को यह देखा नहीं जाता तब वह गांव के जाटवों को भडकाता है। किन्तु जाटव ठाकुर की दोगली नीति से वाकिफ हैं। इस कारण जाटव प्रभु सबके सामने ठाकुर की पोल खोलकर लेखक के पिता को पक्के मकान बनवाने की हिम्मत देते हुए कहता है–''रोहन भैया, तू बना मकान, हम देखते हैं, तुझे कौन ससूरा रोकता है मकान बनाने के लिए।'' दलित समूह संगठनात्मक रूप से जाग जाने का अहसास कराते हुए ठाकुर को प्रभु कहता है–''बहुत लडाया है तुमने हमें आपस में। हम अपनी जिन्दगी जीना सीख गए हैं, अब हम तुम्हारी बातों में आनेवाले नहीं... अपना भला चाहते हो तो चले जाओ यहाँ से, वरना ठीक न होगा।'' ठाकुर दलितों की एकता को देखकर हक्का–बक्का रह जाता है।

अम्बेडकरी विचारों से प्रभावित सूरजपाल चौहान को लगता है कि देष के अन्य दलित बाबासाहब अम्बेडकर को अपनाकर कहाँ से कहाँ पहुँच गए। इसलिए भंगी जाति के लोगों को हिंदू संस्कृति की संकीर्ण मानसिकता छोडकर अम्बेडकरी विचार स्वीकार कर अपने जीवन का उद्धार करना चाहिए। वैसे बाबासाहब किसी जाति या समूह विषेश के न रहकर उन्होंने समग्र दलित समाज के विकास की बात कही है। आत्मकथाकार के षब्दों में–''बाबासाहब अम्बेडकर केवल एक विषेश समुदाय के नहीं, देष के सभी दलितों के हैं। उन्होंने जीवनभर देष के करोडों दलितों के उत्थान के लिए संघर्श किया। वे सामाजिक परिवर्तन के आदर्ष हैं।'' सामाजिक प्रतिबद्धता से आत्मकथाकार वाल्मीकि समुदाय में चेतना निर्माण करने का अविरत प्रयत्न करते रहे हैं जिसका अहसास आत्मकथा पढते समय अनेक बार आता है।

दलितों में आपसी मनमुटाव समाप्त होना चाहिए। सभी को मिलकर सांस्कृतिक क्रांति के लिए एक मंच पर आना चाहिए। इसलिए देषभर में बडे मनोयोग से युद्वस्तर पर अम्बेडकरी अभियान चलाना चाहिए। साथ ही संकीर्ण मनोवृत्ति की साजिष से सचेत होने की बात करते हुए आत्मकथाकार कहते हैं–''आज आवष्यकता इस बात की है कि देष के सभी दलित साहित्यकार समाज को एक सूत्र में बाँधने का काम करें न कि तोडने का।'' सूरजपाल चौहान के मन में यह विचार हमेषा आता है कि कम से कम पढे–लिखे दलितों में संगठनात्मक चेतना निर्माण होनी चाहिए। उन्हीं के षब्दों में–''कम से कम देष के पढे–लिखे दलित आपसी भेदभाव भुलाकर मिलकर रहें तो किसी उपलब्धि से कम नहीं है।'' जरूरी है 'षिक्षा, संगठन और संघर्श' के त्रिसूत्र को आचरण का हिस्सा बनाये। अतः लेखक के मन में दलित एकता की प्रबल इच्छा अनेक जगह, अनेक प्रसंगों में दृग्गोचर होती है। दलित एकता न होने के कारणों की समीक्षा प्रस्तुत आत्मकथा में है।

दलित एकता के लिए दलितों के भीतर षेश हिंदू संस्कृति की संकीर्ण मानसिकता को त्यागना होगा। दलितों के भीतर निर्माण भेदनीति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। अन्यथा छल, प्रपंच और कपट नीति से सभी दलित अलग–थलग पडे हुए हैं। किषोर कौषल कोरी दलित जाति से आते हैं। वे अपने गाँव की आदर्ष बातें कहते हैं किंतु वे भंगी जाति को सवर्ण जैसी पुरानी संकीर्ण मानसिकता से देखते हैं। सूरजपाल चौहान जब किषोर कौषल के गाँव जाते हैं तो घर में हिंदू देवी–देवताओं के रंगीन चित्र लटकाए हुए हैं जिसमें 'बाली–सुग्रीव संग्राम' दिखाया गया है। उसे देखकर आत्मकथाकार कहते हैं–''आज भी हिंदू संस्कृति के बाण से बाबासाहब अम्बेडकर द्वारा देष के दलितों को दिए गए अमर संदेष 'षिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्श करो' को भेदकर क्षत–विक्षत कर दिया गया है। दलितों में फैली हिंदू संस्कृति देष के दलितों को एक नहीं होने दे रही है। हिंदू संस्कृति के छल–प्रपंच व कपटी तीर से घायल देष के सभी दलित अलग–अलग पडे हुए हैं।''

दलित साहित्य की ओर देखने की कई सवर्ण साहित्यकारों की संकीर्ण दृश्टि या दोगलापन होता है, उस मानसिकता पर प्रहार करते हुए आत्मकथाकार हिंदी की श्रेश्ठ साहित्यकार आषारानी व्होरा का प्रसंग बताते हुए उस मानसिकता का परिचय करा देते हैं। आषारानी व्होरा बाबा कानपुरी संगोश्ठी में कहती है–''साहित्य भी कभी दलित होता है... साहित्य तो साहित्य होता है, नहीं मानता कोई दलित साहित्य–...।'' एक दिन आषारानी व्होरा के घर 'षम्बूक' पत्रिका के दो अंक आ जाते हैं। आषारानी व्होरा 'षम्बूक' को दलित पत्रिका समझकर दोनों अंक सूरजपाल चौहान के घर भेज देती हैं। आत्मकथाकार उनकी संकीर्ण मानसिकता भांप लेते हैं और दोनों अंक आषारानी व्होरा के घर वापिस कर आना चाहते हैं, तभी व्होरा जी चाय पीने के लिए कहती है। उनके दोगलेपन की नीति से वाकिफ आत्मकथाकार तीखा प्रहार

करते हुए कहते हैं–''नहीं पीनी मुझे तुम्हारी चाय, तुम्हारी इस एक कप चाय में करोडों दलितों का अपमान भरा है... अपमान के घूँट बार–बार पीने की आदत अब मैं भूल चुका हूँ।''

षिक्षा से आयी चेतना का प्रतिनिधित्व स्वयं सूरजपाल चौहान करते हैं। जिस समय सूरजपाल चौहान आठवीं कक्षा में थे उस समय पिता के साथ कभी–कभी जीवन निगम के आफिस में झाडू–पोछा लगाने जाते थे। वहाँ निगम खजांची पी. कुमार इनके मेधावी रूप को देखकर पिता रोहनलाल से कहते हैं– ''पाँच रूपए कमाने के चक्कर में बच्चे का जीवन बर्बाद मत करो, इसे खूब पढाओ–लिखाओ। आज यह पाँच रूपए कमा रहा है, कल यह पढ–लिख जाएगा तो पचास रूपए रोज कमाएगा।'' रोहनलाल ने भी कुमार जी की बात मानकर बच्चे का झाडू लगाना बंद कर दिया और अपने बच्चे की पढाई पर अधिक ध्यान देते रहें। इस घटना का परिणाम बालक के मन पर अच्छा हुआ। बालक के मन में षिक्षा के प्रति जिज्ञासा और अधिक निर्माण हुई और अपनी अस्मिता और अस्तित्व का अहसास होने लगा अर्थात षिक्षा से आयी चेतना ने बालक के जीवन को ही बदल दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

;1द्ध 'तिरस्कृत' – सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाषन, दिल्ली (2002)